International Journal of Advanced Research in Education and TechnologY(IJARETY)

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| | Impact Factor: 4.933| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 5, September 2022 ||

आधुनिक परिवेश में संत कबीर के दार्शनिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. भुवनेश कुमार परिहार

सह- आचार्य, हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, किशनपोल, जयपुर

सार: कबीर की प्रासंगिकता आज के सन्दर्भ में नैतिकता पर अधिक बल प्रदान करता है । आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य को और अधिक विचारशील, चिन्तन शील होना चाहिए, न कि भावनाओं के आवेश में आकर निर्णय लेने वाला होना चाहिए । प्राथमिकता सामाजिक विषमता और उसके गिरावट को दूर करने के साथ आध्यात्मिकता को भी समाज में प्रतिष्ठत करना था ।

I. परिचय

कबीर के उपदेश, उनकी शिक्षाएँ समाज को एकत्र करने का काम करती हैं। वे लोगों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए कहते हैं, पूजा-पद्धतियों से बाहर निकलने को कहते हैं, 'लोका तुम हो मति के भोरा' भ्रमित जनता को रास्ता दिखाने का कार्य कबीर के उपदेशों उनकी ज्ञानपरक वाणी से आगामी वर्षों में भी किया जाता रहेगा। आज की परिस्थितियाँ कबीर के चिन्तनात्मक मस्तिष्क की व्यापकता का बोध कराती हैं। आधुनिक संदर्भो में कबीर द्वारा कही गयी बातों का नैतिक मूल्य है। वास्तव में कबीर ने मनुष्य को मूल्य परक जीवन जीने की राह दिखाया। केवल यही कारण है कि समय के साथ परिवर्तन केवल बाहरी रूप में हुआ, आंतरिक रूप से हर व्यक्ति की मनः स्थिति अभी भी भ्रमपूर्ण है।

कबीर काव्य की पृष्ठभूमि-निर्माण में कबीर का व्यक्तिगत जीवन विशेष सहायक रहा है। जन्म स्थान काशी का धर्मान्ध वातावरण, माता-पिता के कारण प्राप्त विरोधी संस्कार, पारिवारिक जीवन से असन्तुष्टि, जातिगत विद्रोह, जुलाहा व्यवसाय, पर्यटनशीलता, अशिक्षा और रामानन्द जैसे गुरू की दीक्षा इन सब ने एक साथ मिलकर कबीर-काव्य का स्वरूप निर्मित किया है। कबीर का नाम नामदेव और ज्ञानदेव आदि सन्तों की परम्परा में आता है। इन सन्तों का प्रमुख लक्ष्य समाज के निम्न वर्ग को जागृत करके उच्च वर्ग के सम स्तर पर लाना था। ऊँच-नीच, जाति-पाति का विरोध करके इन्होंने एकता तथा समानता का सन्देश दिया था। कबीर के काव्य में भेदभाव विहीनता,[1,2,3] सर्वात्मवाद, निर्गुण भक्ति, कर्म और वैराग्य का समन्वय, अनन्य प्रेम भावना, नाम साधना, सेवक सेव्य भावना इत्यादि अनेक बातें सन्त नामदेव के प्रभाव स्वरूप भी आई हैं। कबीर उच्च दृष्टिकोण वाले संत थे उनका सामाजिक चिन्तन जनसामान्य, समाजोन्मुख तथा उत्थान के लिए है। निर्गुण निराकार के उपासक संत कवियों ने समाज में व्याप्त बुराईयों रूढ़ियों, कुरीतियों से साधारण जनता को निजात दिलाने का प्रयास किया। कबीर की तरह ही गुरूनानक देव, रैदास, धर्मदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि संतो ने भी समाज के सन्मार्ग पर चलने का संदेश दिया। मानवता, मनुष्यता आदि संवेग कबीर के मन की हितैषणा को जाहिर करते हैं। उनके उपदेश उनकी वाणी में समाज का हित छिपा हुआ है। कबीर की वाणी मूलतः अपने मौखिक रूप में ही रही है। उन्होंने स्वयं उन्हें लिपि बद्ध नहीं किया। माना गया है कि कबीर के शिष्य धर्मदास ने उनकी बानियों का संग्रह 'बीजक' नाम से किया था। इसमें साखी, शब्द और रमैनी तीन छन्दों में लिखित रचनायें है। 'आदि ग्रन्थ' एवं 'गुरूग्रन्थ साहब' में भी कबीर की वाणी संकलित है।

भक्तिकाल को सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण का काल माना जाता है, जिसमें प्रगतिशीलता सामाजिक उन्नयन के रूप में सामने आयी। कबीर ने अपने विचारों से समाज को जितना अधिक प्रभावित किया उतना और किसी ने नहीं। आज भी कबीर की सामाजिक दर्शन उतनी ही प्रासंगिक है जितनी भक्तिकालीन समय में थी। कबीर ने जिस निर्भीकता और साहस के साथ अपनी वाणी प्रवाहित की, उनकी प्रबल आत्मवत्ता का उदाहरण आज भी है। अपने समय की सामाजिक कुरीतियों, व्याप्त असमानता को कबीर ने यथार्थ के धरातल पर महसूस किया। उनकी वाणी से निकले शब्द स्वानुभूत सत्य से जुड़े थे, उन्होंने स्वयं ही सामाजिक यंत्रणाओं को भोगा था। उनका भोगा हुआ यथार्थ ही उनकी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनी। कबीर को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। तत्कालीन समय में जिस जीवटता के साथ वे समाज को बदलने निकले थे वो अपने आप में ही एक चुनौती है। जातिगत, धर्मगत, वर्गगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत जो कटुता समाज में व्याप्त थी उससे अकेला कबीर जीवन पर्यन्त संघर्ष करता रहा कबीर ने कब और कैसे इन सामाजिक भेद-विभेद से संघर्ष किया उसे सरल ही समझा जा सकता है। कबीर ने सभी मानव को एक ईश्वर की संतान माना। उन्होंने ईश्वर की पूजा करने का अधिकारी सभी को माना है और इसका विरोध करने वालो को झूठा कहा है –

"पण्डित वाद बदौ सो झूठा"[1]

जातिगत संघर्ष एवं चुनौती जाति के आधार पर समाज का बँटवारा और सार्वजनिक द्वारा उसे मान्यता देने के बाद 'जाति' से सबंधित विभिन्न दृष्टिकोणों से कबीर को दो-चार होना पड़ा। कबीर का कार्य क्षेत्र तो भक्ति ओर उपासना का था और यहाँ पर भी भेदभाव उन्हें सबसे ज्यादा अखरता था। कबीर ने हमेशा कर्म और परिश्रम को महत्व दिया।[2] वे मेहनत से जीवन यापन करने, परिश्रम से धन प्राप्ति करने और बेवजह धन संग्रह करने के घोर विराधी थे -

"सांई इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए।।"[3]

माया, धन, सम्पति आदि का लालच करने वालों को कबीर ने भटका हुआ राही कहा है। कबीर एक सशक्त क्रांतिकारी भी थे। तद्युगीन समाज के वातावरण को देखते हुए उन्होनें प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति और परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की। समाज और धर्म के प्रत्येक क्षेत्र में पुरातन व गलित रूढ़ियों को नष्ट एवं समाज के भेद-भाव तथा बाह्याडम्बरों को दूर करने के लिए वे निर्भीक होकर सामने आये। समाज सुधार उनके अन्तस की प्रेरणा थी। इसलिए उनमें यह निर्भीकता स्वतः आ गई। बड़ी से बड़ी शक्ति उन्हें उनके कार्य से विमुख न कर सकी। धर्म, सम्प्रदाय, जात-पात, ऊँच-नीच, छुआ-छूत, माया, सम्पत्ति का संग्रह को कबीर ने सामाजिक कुरीति माना है। वे नवजागरण के प्रणेता थे। वो 'सत्य' को ही धर्म मानते थे। ईश्वर में विश्वास रखते थे, भगवद् प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे, वाणी की शीतलता पर बल देते थे –

"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होइ।।"[4]

आज के भौतिकवादी युग में मानव जाति वाणी की शीतलता और आपा दोनों ही दिन-प्रतिदिन खोते जा रहे हैं। एक इंसान दूसरे इंसान के महत्व को भूलते जा रहे हैं। कबीर की सामाजिक दर्शन आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती है जितनी पहले थी।[4,5,6]

कबीर की लोक चिन्ता स्वीकृत पखाण्डी धर्मों से अलग एक नयी विचारधारा को स्वीकार तथा नये मार्गों का अनुसंधान करने के लिए थी। अपने समय के श्रेष्ठ जनवादी कवि थे। कविता उनका उद्देश्य नहीं अपितु साधन मात्र थी, मूलतः वे एक चिन्तक, सुधारक तथा लोकवादी विचारक थे। अपढ़ होते हुए भी कबीर का संपूर्ण साहित्य अशिक्षित लोगों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। जनकल्याण का भाव उनकी रग-रग में था। कविता करना उनका ध्येय नहीं अपितु कविता तो उनके लिए फोकट का माल है। समाज को परिवर्तित करने पर कविता साधन की तरह प्रयुक्त हुई। सामाजिक दोषों पर कबीर ने व्यंग्य भी किये। कई रूढ़ियों, परम्पराओं, धार्मिक आडम्बरों पर कबीर ने अपने शब्द बाण से प्रहार कियें हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, मुस्लिमों का नमाज आदि का उन्होनें कट्टर विरोध किया। कबीर की निर्भीकता, बड़बोलेपन और ओजपूर्ण वाणी ने मृत प्राय लोगों में प्राणों का संचार किया। कबीर ने मनुष्य की मनुष्यता को सर्वश्रेष्ठ माना है। तत्कालीन राजाओं को धार्मिक रूढ़ियों, आडम्बरों अमानवीय अंध महाशक्तियों को ललकारा था। लोकशक्ति उनके साथ जुट आयी थी। साधारण जनों का विश्वास जीतकर उन्होंने लोकवासियों को गहराई से जाना जाता था।

आज के परिवेश में कबीर का अक्खड़पन प्रासंगिक है। उनकी फटकार और पुचकार दोनों मे वह शक्ति विद्यमान हैं जो साधारण जनमानस को आकर्षित करती है। कबीर के उपदेश, उनकी शिक्षाएँ समाज को एकत्र करने का काम करती हैं। वे लोगों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिए कहते हैं, पूजा-पद्धतियों से बाहर निकलने को कहते हैं, 'लोका तुम हो मति के भोरा' भ्रमित जनता को रास्ता दिखाने का कार्य कबीर के उपदेशों उनकी ज्ञानपरक वाणी से आगामी वर्षों में भी किया जाता रहेगा। कबीर ने मनुष्य को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना माना उन्होनें सभी को एक ही ईश्वर की संतान माना। इस देह में सांई बसते हैं, सभी के मन में एक ही ज्योति व्याप्त है, एक ही तत्व सर्वत्र विद्यमान है। तो भी लोक जाति-पांति, छुआ-छूत, धर्म आडम्बर के भेदभाव को मध्य में रखकर अज्ञानता की ओर बढ़ता है। इसीलिए कबीर ने मानव को विवेक और बुद्धि से सीखने का मार्ग बताया। वे मानव जीवन को संवारना चाहते हैं, वे मनुष्य के हृदय में गहरे उतरकर उसे सत्य की ओर ले जाना चाहते है। उनके लिए सत्य से बड़ा कोई तप नहीं। प्राणि मात्र से प्रेम, दया, करूणा का भाव रखना ही सबसे बड़ा धर्म है। कबीर मानव स्वभाव की कवियों तथा चित्त की चंचलता को भी इंगित करते हैं। कबीर के अनुसार सर्व साधारण को संतोषरूपी धन की प्रबल आवश्यकता है। वे कहते हैं –

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| | Impact Factor: 4.933| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 5, September 2022 ||

"कबिरा खड़ा बाजार में, सबकी चाहे खैर।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।।"[5]

कबीर ने हमेशा समय से आगे की ओर रूख किया। उनकी दूरदर्शिता इसी बात में प्रकट होती है कि उन्होनें समय से आगे की बात कही साम्प्रदायिक दंगे, धार्मिक भेदभाव इन सभी की भयावहता को कबीर ने समझा लिया था। शायद इसीलिए उन्होनें बार-बार एकता पर बल दिया। आज भी समाज इन मानसिक बेड़ियों से जकड़ा हुआ हैं आज भी कबीर जैसे चिन्तक की जरूरत है। आज की परिस्थितियाँ कबीर के [7,8,9]चिन्तनात्मक मस्तिष्क की व्यापकता का बोध कराती हैं। आधुनिक संदर्भो में कबीर द्वारा कही गयी बातों का नैतिक मूल्य है। वास्तव में कबीर ने मनुष्य को मूल्य परक जीवन जीने की राह दिखाया। केवल यही कारण है कि समय के साथ परिवर्तन केवल बाहरी रूप में हुआ, आंतरिक रूप से हर व्यक्ति की मनः स्थिति अभी भी भ्रमपूर्ण है।[6] एक नियत और निश्चित रूप को तय कर पाना अभी असम्भव लक्ष्य है कबीर की सोच, उनका चिन्तन यदि अंशतः भी क्रियान्विति की ओर बढ़ता तो आज समाज का ढाँचा किसी मजबूत आधार पर खड़ा होता और अधिकारिक समाज का स्वरूप निश्चित होता।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।[7]

हे मन ! धीरे-धीरे सब कुछ हो जाएगा माली सैंकड़ों घड़े पानी पेड़ में देता है परंतु फल तो ऋतु के आने पर हीं लगता है । अर्थात धैर्य रखने से और सही समय आने पर हीं काम पूरे होते हैं।
कबीर का काव्य उनके व्यक्तित्व का मूर्त रूप है। उनकी अक्खड़ता, फक्कड़ता, निर्भीकता, स्पष्टवादिता, क्रांतिकारिता और अहंभाव आदि सभी विशेषतायें उनके काव्य में झलकती है जो युगों-युगों प्रेरणा देती रहेगी। कबीर के प्रभावशाली अद्वितीय व्यक्तितत्व ने स्वभाविक रूप में उनके काव्य में भी युगान्तकारी प्रभाव शक्ति का सृजन किया है, जो आज के दौर में भी अति प्रासंगिक है।

II. विचार-विमर्श

संत साहित्य में अपभ्रंश व सिद्ध, जन साहित्य, नाथ पंथ और वैष्णव भक्ति आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत नामदेव, गुरूनानक महाराज, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जबदास, मलूकदास, सहजोबाई इत्यादि का संत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं कि संत धारा साहित्य में कबीरदास अग्रिम अधिकारी रहे हैं। हिंदी संत काव्य की दृढ़ नीव रखने वाले कबीरदास हुए हैं। कबीरदास के साहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्मकांड की विसंगतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना रहा। कबीरदास एक संतकवि होने के साथ ही एक समाज सुधारक की भूमिका में भी थे और जातिविहीन समाज व नारी अधिकारों के सचेतक थे।

संत साहित्य का प्राण तत्त्व है-लोक धर्म। सतरूपी परम तत्व का साक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति को संत कहा जाता है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध 'शांत' से माना है और इसका अर्थ निरूपित किया है – निवृत्ति मार्गी या वैरागी। सामान्यत: सदाचार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को संत कहा जाता है। जो आत्मोन्नति एवं लोकमंगल में रत हो। इस अर्थ में अगर देखें तो 'कबीरदास' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। आज की विचाराधारात्मक उठा-पठक और सामाजिक समस्याओं के बीच अनेक बार कबीर की बानियों के हवाले दिए जाते है। उनकी उक्तियों की सार्थकता बतायी जाती हैं। आज भी हिंदू समाज की सवर्ण या दलित समस्याओं या मुस्लिम कट्टरपंथी समस्याओं से लड़ने हेतु कबीरदास अक्सर याद किए जाते हैं।

'कबीर' भक्तिकाल के महान कवि, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास किया। यह कबीर के साहित्य की ही देन है कि इतने वर्षों बाद भी हम उनकी रचनाओं में अपनी समस्याओं का हल देखते हैं। कबीर के साहित्य की प्रासंगिकता दो दृष्टियों से है:-
· प्रथमत : साहित्य चाहे किसी भी काल का हो यदि वह वास्तविक साहित्य है तो सदा प्रासंगिक रहेगा। पठनीय रहेगा।
· द्वितीयत: उसका कथ्य, संदेश हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं के द्वारा एक कथ्य और संदेश देने का प्रयास किया जो आज भी प्रासंगिक है और इन्हीं कथ्य, संदेशों के द्वारा कबीर प्रासंगिक है।

कबीरदास की रचनाओं पर बीती आधी सदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' तथा नामवर सिंह ने 'दूसरी परंपरा की खोज' नामक पुस्तक में कबीर की पुन: प्रतिष्ठा में काफी कुछ लिखा है। इससे पूर्व भी कबीरदास जी के ऊपर कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर', जिसमें संत कबीरदास जी के दोहे का अंग्रेजी अनुवाद है। 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' अपने पहले संस्करण के समय से ही लगातार छप रही है तथा इसने पश्चिम में कबीर की लोकप्रिय

छवि स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्ष 1910 में ही जब टैगोर अंग्रेजी में लिख रहे थे, तब उन्होंने कबीर को एक उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल किया कि कैसे भारतीय अध्यात्म ने समुदायों के बीच विभाजन को पाटने का कार्य किया और कबीर, नानक और चैतन्य जैसे आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने-अपने समुदायों और ईश्वर के बीच परस्पर संबंधों का संदेश दिया।

व्यक्ति और पर-ब्रह्म के बीच संबंधों पर बात करते हुए टैगोर अक्सर कबीर की ही सहायता लेते है। अपनी रचना 'पर्सनेलिटी' में, जो कि 1917 में अमेरिका में उनके व्याख्यान पर आधारित एक किताब है, वह जिक्र करते हैं कि कैसे 'इंसान को एक से दूसरे के साथ सीधे संवाद के लिए जाना जाता है।' वह संवाद रूप और बदलावों की दुनिया में नहीं, दिक् और काल के विस्तार में भी नहीं, बल्कि यह संवाद चेतना के उस अंतरतम अकेलेपन में होता है, जो कि बेहद गहन और तीव्र होते हैं।

इसके बाद उन्होंने इस विचार को पुष्ट करने के लिए कबीर के अपने संकलन में से 76वें दोहे को उद्धृत किया। भारत के संबंध में [10,11,12]अक्सर कबीर का उल्लेख करते हैं। जैसे अपनी किताब नेशनलिज्म(1916) में वह यह चर्चा करते हैं कि कैसे भारत में सांप्रदायिक सौहार्द स्थापित हुआ और फिर अपने विचार के समर्थन में नानक, कबीर और चैतन्य को उद्धृत करते हैं।

कबीर में टैगोर की दिलचस्पी उनके सहयोगी क्षितिमोहन सेन (1880-1960) से भी प्रभावित थी। अपनी रचना 'इंडियन मिस्टिसिज्म' में उन्होंने विस्तार से बताया है कि जब वह 1908 में शांतिनिकेतन पहुँचे, तब वह कबीर के पदों पर काम कर रहे थे और जब टैगोर को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने इसे प्रकाशित करने के लिए उनको प्रोत्साहित किया। 1910 और 1911 में उन्होंने चार पर्चे छपवाए, जिसमें एक संक्षिप्त परिचय, बांग्ला लिपि में हिंदी के पदों तथा बांग्ला में उन पदों की विस्तारपूर्वक व्याख्या थी। टैगोर कबीर को भारत की धार्मिक एकता का उदाहरण मानते थे, इस बात को और क्षितिबाबू के कबीर पर किए गए काम को देखें तो यह समझ में आता है कि कबीर का अनुवाद उनके लिए कितना महत्वपूर्ण था।

कबीर मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे, भक्त थे, संत थे। वे 'मन' को जीतने के लिए संतों और भक्तों को प्रेरित करते रहते थे। कबीर का सारा का सारा संघर्ष आसक्ति और तृष्णा के विरूद्ध था। यही बात उन्हें सामाजिक दृष्टि से प्रासंगिक बनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को समाज-सुधारक नहीं मानते है। उनके अनुसार कबीर पहले कवि थे, समाज सुधारक बाद में। समाज-सुधारक न मानने के पीछे आचार्य जी के जो भी तर्क हों, इतना अवश्य है कि कबीर के विचार समाज की चक्की में पिस-पिस कर ही इतने सूक्ष्म बने थे। हो सकता हैं समाज-सुधार, उनका मुख्य उद्देश्य न रहा हो, लेकिन जिस समाज के बाशिंदों को वह संबोधित करते थे, वे समाज में हाशिए पर पड़े हुए लोग थे। चतुर सामाजिक जन सारी मलाई खुद मार ले जाते थे और छाछ अबोधों के लिए छोड़ जाते थे। कबीर की सारी लड़ाई इसी अन्याय के खिलाफ थी। कविता के माध्यम से कबीर की समाज की बुराईयों पर जो चोट करते हैं, वह समाज-सुधार का ही तो हिस्सा है। समाज-सुधार और क्या होता है?

कविता रूपी झाड़ू से समाज की गंदगी को वे बुहारते जाते थे। आधुनिक प्रचलित तरीकों की दृष्टि से वे समाज सुधारक भले ही न कहलाएँ, लेकिन कबीर की कविताओं, दोहों, पदावलियों में समाज-सुधार की भावना से युक्त आध्यात्मिक भूमि दिखाई देती है। कई बार आध्यात्मिक पक्ष भारी पड़ता है। कुल मिलाकर देखें, तो कबीर की कविताई इन दोनों के मधुर पाक की तरह है।

कबीर अपने दौर के प्रौढ़ रचनाकार हैं। उनकी कविताओं में प्रगतिशीलता का तत्व प्रधान रूप से विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर को कवि न मानकर समाज सुधारक माना है, जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें कवि माना और यह सिद्ध किया कि समाज सुधार उनकी कविता और कवित्व क्षमता के 'बाई प्रोडक्ट' के मानिंद है।

मेरी दृष्टि में उक्त दोनों आचार्यों की पहली स्थापना ठीक है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, कबीर समाज सुधारक थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में कबीर कवि हैं। उनकी दूसरी स्थापनाओं में नकारात्मक अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। अत: कबीर के संदर्भ में उनकी सकारात्मक अभिव्यक्तियों को लेते हुए मेरा विचार है कि कबीर कवि, समाज सुधारक, संत, भक्त तथा प्रगतिशील विचारक हैं। इस प्रसंग में डॉ. रामचंद तिवारी के कुछ वाक्य उद्धृत हैं जो उन्होंने कबीर के बारे में लिखे हैं:-
''कबीरदास एक सिद्ध साधक एवं अखंड आस्थावादी इस विराट विश्व के मूल में विद्यमान रहस्यमयी सत्ता की कण-कण में अनुभूति करने वाले सच्चे रहस्यवादी, मानव-मात्र की एकता का प्रतिपादन करने वाले विवेकशील समाजद्रष्टा, निर्गुण-सगुण के भेद से ऊपर समतत्व का ध्यान करने वाले योगतत्वविद्, दार्शिनिक और सहज मानवीय जीवन की प्रतिष्ठा में अवरोधक शक्तियों के विरूद्ध विद्रोह करने वाले प्रज्ज्वलित चेतना के कवि थे।''

प्रस्तुत आलेख का केंद्र विंदू यही है कि वर्तमान दौर में कबीर के साहित्य की सार्थकता कितनी है। क्योंकि वर्तमान दौर में कबीर एक साहित्यिक, धर्मगुरू के रूप ज्यादा दिखाई पड़ते है। जबकि वह मूल रूप से समाज सुधारक है। उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी समाज में हाशिए पर पड़े लोगों को मुख्यधारा में लाने हेतु संघर्षों में बिता दिया। कबीर की सार्थकता निम्न विंदूओं से समझी जा सकती है।

· कबीर की बानियों में दिखावटी धर्म से विद्रोह और वास्तविक धर्म के प्रचार का क्रांतिकारी पहलू यह था कि उसने मध्यकाल में मनुष्य को आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दिया। मनुष्य को मनुष्य से प्रेम करना सिखाया।
· कबीर के जीवन का सबसे बड़ा संदेश आज के मनुष्यों के लिए यह है कि उन्होंने व्यापार और शिल्प की आमदनी पर संतोष करते हुए आम जीवन जीया। आज के संदर्भ में हम सभी को इसे सीखने की ज़रूरत है।
· उर्दू के प्रगतिशील शायर अली सरदार जाफरी के अनुसार, ''हमें आज भी कबीर के नेतृत्व की ज़रूरत हैं। उस रोशनी की ज़रूरत है जो इस संत के दिल से पैदा हुई थी। आज दुनिया आजाद हो रही हैं। विज्ञान की असाधारण प्रगति ने मनुष्य का प्रभुत्व बढ़ा दिया है। उद्योगों ने उसके बाहुबल में वृद्धि कर दी है। फिर भी वह तुच्छ है। संकटग्रस्त है। दुखी है। वह रंगों में बंटा हुआ है। जातियों में विभाजित है। आपस में धर्मों की दिवारें खड़ी हुई है।''[13,14,15]

उपरोक्त पंक्तियों को अगर हम देखें तथा भक्ति काल के समय की परिस्थितियों को देखें तो पायेंगे कि आज के समय में कबीर की कितनी ज़रूरत है। विषय और सांकेतिक व्यंजनाओं के कारण कबीर की बानियां आज के पाठकों को समकालीन जीवन के बदले हुए संदर्भों में झकझोरती है जितनी मध्यकालीन यथार्थबोध के संदर्भों में।

कबीर के सामाजिक चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनमें एक अद्‌भुत संतुलन मौजूद है, जो किसी भी रचनाकार की लेखकीय ईमानदारी का उदाहरण है। पर उससे भी बड़ी बात है उनका मनुष्य होना। इस एक बिंदु पर कबीर हमें आश्वस्त ही नहीं करते, बल्कि कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि उनका संवेदनशील मनुष्य उनके कवि से भी ज्यादा महान है। तभी तो वे समस्त सांसारिक पीड़ा को ओढ़े हुए हैं –
चलती चाकी देखि के दिया कबीरा रोय ।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय ॥

उनकी आत्म–पीड़ा लोक-पीड़ा और लोकानुभूति से निष्पन्न एक ऐसी छटपटाहट है जो उनकी जीवन-साधना का अंग बन गई तथा जिसमें विषपान कर अमृत बाँटने का संदेश है। पराई पीर को समझना, मध्यकालीन लोक जागरण का वह गुरूमंत्र था, जो शताब्दियों से दबी-कुचली मानवता के लिए लोक-वेद का मंत्र बन गया। इस अर्थ में कबीर गरलपायी हैं।

कबीर ने भेदभाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर, भक्त के रूप में जिस आदर्श मानव को सामने रखा है, वह मानव व्यक्तित्व के विकास की संपूर्ण संभावनाओं को निश्शेष कर उसे ईश्वरत्व के स्तर पर पहुँचा देने वाला है। इस रास्ते में जो भी चीज उन्हें बाधक लगी, उस पर अत्यंत सीधी-सपाट भाषा में वे तीखी चोट करते हैं।

कबीर ने इस बात को बड़ी अच्छी तरह से समझ लिया था कि प्रभुवर्गीय संस्कृति के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए पंडे-पुरोहितों और मुल्ला-मौलवियों के सामाजिक–धार्मिक वर्चस्व को तोड़ना जरूरी है। लेकिन यह कार्य, जितना आवश्यक था, उतना ही कठिन भी। पुरोहितों के लिए कर्मकाण्डी विधानों का बना रहना जरूरी था, तो जन-साधारण के हित इनसे मुक्त होने में था। इस क्रम में वाद-विवाद की तार्किक शैली में लिखी गई कबीर की कविता प्राय: संबोधित कविता है और उसमें संबोधन के तीन स्वर हैं, जो उनके सामाजिक चिंतन की दशा और दिशा को निर्धारित करते हैं। प्रथम स्तर पर कबीर की कविता 'अवधू' अथवा 'अवधूत' को संबोधित है, तो दूसरे स्तर पर पाँड़े, 'पंडित, 'काजी', और मुल्ला को। इसी प्रकार तीसरा स्तर जनता को संबोधित कविता है, जहाँ संबोधन के शब्द हैं- 'साधो' और 'संतो'। व्यंग्य करने में उनका कोई सानी नहीं। पंडित हो या काजी, अवधू हों या जोगिया, मुल्ला हों या मौलवी, सभी को वे अपने व्यंग्य के निशाने पर रखते थे। और फिर चूंकि भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था, अत: वे जिस बात को जिस रूप में प्रकट करना चाहते थे, उसी रूप में भाषा से कहलवा लेते थे। कबीर के व्यक्तित्व के सामने भाषा कुछ असहाय-सी दरिद्र नजर आती है। जो बात कहनी असंभव हो, उसको नया स्वरूप देकर मनोग्राही बना देने की शक्ति कबीर की भाषा में है। वैसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह प्रचलित कथन है कि ''हिंदी-साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा धनी व्यक्तित्व लेकर कोई अन्य लेखक उत्पन्न नहीं हुआ।''

उनका विरोध सांसारिक दृष्टि से दु:खी होने से है और भेद-भाव से भी। विरोध का स्वर तीखा है, कड़वा है। कहते हैं दु:खी तो सब हैं.....
''जोगी दुखिया जंगम दुखिया तपसी कौ दुख दूना हो।
आसा त्रिसना सबको व्यापै कोई महल न सूना हो। ''

और दु:ख का कारण ये 'आसा' और 'त्रिसना' ही हैं। अत: मन के विकारों- 'आसा' और 'त्रिसना' का शमन करना ही होगा। मानव-मानव में भेद तो परम अज्ञान का सूचक है। इसी तात्विक दृष्टि से अभिप्रेरित होकर कबीर ने जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच और ब्राह्मण-शूद्र के भेद का विरोध किया है। वे कहते हैं कि तत्त्वत: ये मिथ्या हैं तथा एक ही ज्योति सबमें व्याप्त है, दूसरा कोई तत्त्व नहीं-

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| | Impact Factor: 4.933| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 5, September 2022 ||

''एकहि जोति सकल घट व्यापत दूजा तत्त न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो भटकि मरै जनि कोई॥''

परमात्मा ने एक ही बूँद से सारी सृष्टि रची[16,17,18] है, फिर ब्राह्मण-शूद्र का भेद क्यों? यदि हिंदू और तुर्क दो होते, तो जन्म से ही उनमें अंतर होता।

छूआछूत का विरोध भी कबीर ने इसी आधार पर किया। कहते हैं कि पवित्र स्थान कौन-सा है? विचार करने पर माता-पिता भी जूठे हैं और वृक्षों में लगने वाले फल भी, अग्नि और जल भी जूठे हैं। गोबर और चौका भी जुठे हैं। और तो और, अन्न भी जूठी कलछी से ही परोसा जाता है। वस्तुत: पवित्र और शुद्ध तो वे ही लोग हैं, जिन्होंने हरि की भक्ति करके अपने मन के विकारों को दूर कर लिया है। वे मन की पवित्रता और आंतरिक शुद्धता पर बल देते हैं। यह मन की पवित्रता भी एक आध्यात्मिक सत्य है।
''कहु पंडित सूचा कवन ठाऊ।
माता-पिता भी जूठा-जूठे ही फल लागे।
कहै कबीर तेई जन सूचे।
जे हरि भजि तजहिं विकारे।''

कबीर ने साधन के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया है। आडंबरी योगियों, तिलकधारी वैष्णवों-लुंचितों-मुण्डितों-मौनियों-जटाधारी से लेकर पीर-मुराद-काजी-मुल्ला-दरवेश आदि सभी भ्रांति में पड़े हुए हैं। ये अहंकार में पड़कर सत्य से विमुख हैं। वे तो पूजा-अर्चना, तीर्थ-व्रत तथा रोजा-नमाज, सभी को बाह्याचार ही मानते हैं। यहाँ पर वे कहते हैं:
''काँकर-पाथर जोरि के मस्जिद लियो चुनाय।
त चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहरो भयो खुदाय ॥''

यानी अल्लाह बहरे नहीं हैं, मन से आवाज लगाओ, तुम्हारी आवाज उन तक जरूर पहुँचेगी। वे आगे कहते हैं:
''पाहन पूजै हरि मिले तो मैं पूजूँ पहार।
ताते वो चाकी भली पीस खाय संसार॥''

यहाँ पर वे मूर्ति-पूजा के आडंबर को प्रश्नचिह्नों को घेरे में रखते हैं और मन की पूजा तथा कर्म की साधना पर बल देते हैं। तप-जप, रोजा-नमाज, ये सब मन को परिष्कृत करने के साधन हैं। यदि दिल साफ नहीं, तो 'वजू' करने से क्या लाभ?
''क्या उजू जप मंजन कीएँ क्या मसीति सिरू नाएँ।
दिल महिं कपट निवाज गुजारै क्या हज काबै जाएँ।''

मस्जिद में जाकर सिर नवाने से क्या बनेगा? नमाज गुजारना या हज और काबे जाना तभी सार्थक है, जब दिल में कपट नहीं है। आशइ यह है कि कबीरदास ने जहाँ कहीं ढोंग, दिखावा, कपट, धोख, फरेब, आडम्बर, स्वांग, प्रपंच, छल, छद्म देखा, वहीं पर निर्मम प्रहार किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कबीर को संत तो मानते थे, कवि नहीं। जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें सहज प्रवृत्ति का कवि कहते थे। कबीर की सामाजिक पकड़ इतनी जमीनी और इतनी गहरी थी कि कविता की अट्टालिकाएँ काफी सहज और ऊँची बनती जाती दिखती हैं। इस मायने में, कबीर की फक्कड़ प्रवृत्ति उनको काफी साफ-सुथरे व्यक्तित्व का स्वामी एवं पारदर्शी संत के रूप में सामने लाती है। यहाँ उनको पारदर्शी कहना तर्कसंगत इसलिए है कि वे कथनी-करनी दोनों में भेद नहीं करते थे और इस बात का सामाजिक जीवन के क्षेत्र-कर्मक्षेत्र में वे विरोध करते थे। अपनी लेखनी के माध्यम से भी उन्होंने इस प्रवृत्ति को खत्म करने की मानो कसम खा ली थी।
''कबिरा खड़ा बजार में लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे आपना चल हमारे साथ॥''

यहाँ मशाल यानी लुकाठी भगवान बुद्ध के 'अप्प दीपो भव', अर्थात् 'स्वयं का प्रकाश खुद बनो' उक्ति की ओर बढ़ते रहने की प्रेरणा देने वाला उपकरण सरीखा है। साथ ही, मन रूपी घर में जो अनुचित भावनाएँ घर कर गई हैं, उन्हें जलाने के जो लोग इच्छुक हैं, वे केवल उनको अपने-साथ आने की चुनौती देते हैं। ऐसी चुनौतियाँ तो आज के जमाने में और भी प्रासंगिक हो गई हैं, क्योंकि तब के जमाने से लेकर अब तक मन के भीतर काई की परतें और ज्यादा जम गई हैं। कवित्व का दंभ कबीर में भले न रहा हो, परंतु जमीनी सच्चाई की अभिव्यक्ति अपने अलग व निराले अंदाज में जिस कवित्व प्रतिभा तथा पटुता के साथ उन्होंने की है, वह वाकई काबिले-गौर तथा काबिले-तारीफ भी है।

सूक्ष्म से सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ कितनी सरल और सपाट हो सकती हैं, यह अगर देखना हो, तो कबीर वाङ्गमय में देखिए। कैसा भी दुर्बोध विचार, कैसे भी गूढ़ निहितार्थों वाले तथ्य कबीर सामाजिक-दार्शनिकों के सामने ऐसे परोसते हैं, मानो पकी-पकाई खिचड़ी। कबीर जीवनानुभव को ही अपनी लेखनी से उकेरते थे। सुनी-सुनाई बातों पर उनका विश्वास नहीं था। इसीलिए तो उन्होंने कहा है
''तू कहता कागद के लेखी,[19,20]
मैं कहता आँखिन की देखी।''

कबीर संत भी थे, कवि भी थे। निम्न पंक्तियों में उनके दोनों रूपों का संगम देखें-
'' साधो, देखो जग बौराना।
हिंदू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़तु मरतु हैं, मरम कोई नहीं जाना॥''

आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत उनकी निम्न पंक्तियाँ देखें –
''झीनी-झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहै कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंड़ा-पिंगला ताना भरनी, सुसमन तार से बीनी चदरिया।
सो चादर सुर-नर-मुनि ओढ़िन, ओढ़ि के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीरा जतन से ओढ़िन, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।''

उपर्युक्त कथन में कबीरदास जी का आत्मविश्वास साफ-साफ झलकता है। वे बात को जीवन के ठोस सत्य के धरातल पर रखकर काफी कठोरता से कहने के पक्षधर थे। उनमें एक प्रकार की नैतिक ईमानदारी का अहसास कूट-कूटकर भरा हुआ था। इसी कारण, उनके अंदर गजब का आत्मविश्वास था। इसीलिए जब अदम्य आत्मविश्वास के साथ डंके की चोट पर वे अपनी बात कहते थे, तो हड़कंप मच जाता था। उनमें दंभ का लेशमात्र भी नहीं था। उनका स्वभाव, उनकी प्रवृत्ति फक्कड़ाना थी। उनकी आदत अक्खड़ों जैसी थी। भगवान के सच्चे भक्तों के सामने वे निरीह-से लगते थे, तो भेषधारियों के आगे प्रचंड रूप में आ जाते थे।

कबीरदास में एक सच्चे युग प्रवर्तक की दृढ़ता विद्यमान थी। उनमें वे तमाम गुण थे, जिनकी चर्चा उनके परवर्ती करते रहे हैं। प्रेम रस से पगे वे ऐसे फकीर थे, जिनकी वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी कल थी। वे सच्चे अर्थों में अपने युग के प्रगतिशील पुरोधा थे। विचारों की दैन्यता उनके पास नहीं थी। गरीब होते हुए भी वास्तविक अमीर थे। उनके पास विचारों का धन पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। कबीर ने स्वयं को भक्त कहा। जो व्यक्ति भक्त के अलावा संत या कवि या समाज-सुधारक या क्रांतिकारी के नाम को खुद पर चस्पाँ नहीं करना चाहता था, उसी व्यक्ति को परवर्ती साहित्यकारों ने कई-कई नामों से पुकारा। यह कबीर को अभीष्ट नहीं था। उनको अभीष्ट यह था कि कि लोग उनकी रचनाओं में प्रक्षेपित भावों को जस-का-तस ग्रहण करें तथा अपने जीवन को तदनुरूप बनाने की चेष्टा करें ताकि ऊँच-नीच, भेद-भाव, लोलुपता, संग्रह आदि प्रवृत्तियों का नाश हो, क्षरण हो तथा समाज में जो तमाम दूरियाँ बन गई हैं, मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरियाँ वे कम हों। मनुष्य इन भेद-भाव की भावनाओं का प्रतिकार अपने मन के भीतर करे तथा उसे कर्म और आचरण के धरातल पर उतार कर अपनी सार्थकता सिद्ध करे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर को समष्टिवादी न मानकर व्यष्टिवादी मानते थे। यहाँ कबीर को व्यष्टिवादी कहने का उनका तात्पर्य शायद यह रहा हो कि कबीर ने प्रत्येक मनुष्य को आत्मा तथा मन को पवित्र करने के साथ-साथ, निरंतर उद्यम करने को प्रेरित किया।
''मन के हारे हार है।
मन के जीते जीत।।''

इस प्रकार की उक्तियों से वे सदैव मन को वश में करने की प्रेरणा आम आदमी को देते रहते हैं। इसी प्रकार, जब व्यक्ति अपने 'मन' को जीतकर उच्च आदर्श के बिंदु पर पहुँचता है तब समाज का कल्याण होता है। समाज के इस रूप में निर्माण की कल्पना अगर कबीर करते हैं तो उन्हें समष्टिवादी कहने में कोई बुराई नहीं।

कबीर का ध्यान भेदभाव की ओर भी गया, लेकिन वे वहाँ पर एक आम आस्तिक भारतीय की विचारधारा ही दे पाए। यदि वे ऐसा कर पाते, तो समाज के विस्तृत तबके को अधिकाधिक लाभ जरूर मिलता। आर्थिक विषमता भी मनुष्यों की स्वार्थवृत्ति का परिणाम है, कबीर इसे भी समझने में सफल नहीं रहे थे। वे मानते थे कि भगवान ने जिसके लिए जितना निश्चित किया है उसको उतना ही प्राप्त होगा।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| | Impact Factor: 4.933| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 5, September 2022 ||

जीवन की सुविधाएँ अच्छे कर्मों का और असुविधाएँ बुरे कर्मों का परिणाम हैं। उनके लिए सुख-दु:ख अपने ही कर्मों का भोग था, अन्यथा बराबरी का दर्जा देने के क्रम में, उनका ध्यान आर्थिक गैर-बराबरी पर नहीं जाता, ऐसा नहीं है।
''जाकौं जेता निरमया ताकौं तेता होई।
राई घटे न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई॥''

अगर उपयोग किया जाए, तो कबीर ने बहुत सारी ऐसी बातें कहीं हैं, जिनसे समाज-सुधार में सहायता प्राप्त हो सकती है। वे बाह्याचार के घोर विरोधी थे। बाह्याचार से मुक्त मनुष्यता को ही वे प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। इन विचारों को यदि आज का आधुनिक विचारशील मनुष्य अपने अंतर में ला सका, तो यहीं कबीर को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कबीर की भक्ति ईश्वर के दरबार में समानता और एकता की पक्षधर है। वर्तमान संदर्भों में अगर हम देंखे तो आज भी मंदिरों में जाति के नाम पर भेदभाव बरता जाता हैं। आज भी ऐसे कई ईश्वर के दरवाजे है जहाँ धर्म, जाति के नाम पर भेदभाव किया जाता हैं। लेकिन कबीरदास सभी को समान दृष्टि से देखते थे। ऐसे में आज भी कबीर के उपदेशों की ज़रूरत है। कबीर ने निर्गुण निराकार राम की आराधना कर यह सिद्ध किया कि ईश्वर निराकार है। सर्वज्ञ है। ऐसे समय में जब हमारा समाज इतना आधुनिक होते हुए भी धर्म के मामले में इतना उलझा हुआ है। मंदिर-मस्जिद के झगड़ों में उलझा हुआ है। कबीर के दोहों को उभारने की ज़रूरत है।
''माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुँह माहि।
मनुवाँ तो दस दिसि फिरे, यह तो सुमिरन नाही॥

प्रस्तुत दोहे से हम समझ समते है कि कबीरदास जी ने किस प्रकार धार्मिक आडंबरों पर चोट किया हैं। वे वास्तविक पूजा पर बल देते हैं। ऐसे में मुझे पिछले दिनों हुए एक सर्वे की याद आती है जिसमें भारतीय समाज को हद से ज्यादा धार्मिक दिखाया गया हैं।'' इसके बावजूद आज हमारे जीवन मूल्य टूट रहे है। हमारी मान्यतायें मूल्यों से निर्धारित नहीं हो रही हैं। हम धार्मिक कट्टरवाद के जाल में जकड़े जा रहे हैं। हमें आज कई जगह ऐसी खबरें पढ़ने-देखने को मिलती है जिसमें दो धर्मों के समुदायों के बीच दीवार बनाने की बात आती है ऐसे में कबीर स्वत: याद आते है जिसमें कबीर ने उस जमाने में इन दोनों धर्मों को हिंदू-मुसलमान को जोड़ने की कोशिश की थी; ऐसे में जब आज हम ज्यादा आधुनिक है तो क्या कबीरदास के विचारों की ज़रूरत फिर से है? मतलब हम आज भी अपने अंतर में मानवीय मूल्यों को उतार नहीं पाए हैं। वास्तव में कबीरदास ने धर्म और जीवन में कोई भेद रहने नहीं दिया। जीवन की सात्त्विक अभिव्यक्ति ही धर्म है।

कबीर ने नव मानववाद की स्थापना के लिए प्रयास किया। सभी धर्मों, पंथों, सभी मत-मतांतरों को खारिज कर वे एक तत्व पर जोर दे रहे थे। जिसे कुछ विद्वान एकेश्वरवाद की संज्ञा दे रहे थे। कुछ निर्गुणवाद। लेकिन सच मायनों में यह अनुभव पर आधारित नया ज्ञान था। जिसे अनेक विद्वान ज्ञानमार्ग का नाम देते हैं। इसी कारण कबीर कहते हैं:-
''हरि है खांड रेतु महि बिखरी, हाथी चुनि न जाई।
कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होई कै खाई॥''

अर्थात् हरि खांड की तरह है जो संसार रूपी रेत में बिखरा हुआ, फैला हुआ मौजूद है। अंहकार से उन्मत्त रूपी हाथी उसे नहीं चुन सकता। कबीर का कहना है कि अपनी सहज और सूक्ष्म शक्ति से कीट की तरह या चीटीं की तरह उस खांड को पाया जा सकता हैं। अर्थात् ईश्वर तो सर्वत्र है। सर्वज्ञ है।
कबीरदास ने ईश्वर तत्व और मानव प्रेम दोनों को अभिन्न माना हैं। ईश्वर को पितारूप, मातारूप, मित्र के रूप में उन्होंने माना है। कबीर ने जाति प्रथा और वर्णाश्रम व्यवस्था पर चोट किया हैं। कबीर का यह दोहा आज भी प्रासंगिक है:-[17,18,19]
'' यह जग अंधा, मैं केहि समझावौं।
घर की वस्तु नजर नहीं आवत,
दियान बारि के ढूढ़त अंधा॥''

अर्थात् कबीर बिना वजह परेशान होने को माया मानते है और कहते हैं कि सब आपके अंदर बसा है, घर-घर ढूंढ़ने की ज़रूरत नहीं। यह आज के दौर में सार्थक है। कारण कि मनुष्य सत्य की तलाश में जगह-जगह भटक रहा है। वह सत्य उसके अंदर ही है।

इसी कारण आज के दौर में कबीरदास का साहित्य सर्वाधिक प्रासंगिक है। यह साहित्य प्रत्येक चुनौती के मौके पर बहस के अखाड़े में मुस्तैद खड़ा रहता हैं। इस प्रकार अगर हम उपरोक्त तथ्यों पर गौर फरमाए तो पाते है कि कबीर आज कितने प्रासंगिक हैं। यह उनकी बानियों, दोहों से स्पष्ट झलकता है। चूँकि कबीर ने जिन प्रथाओं पर चोट किया था वो आज भी जिंदा है ऐसे में उनकी आवश्यकता फिर महसूस की जा सकती है। उन कोढ़ों को दूर करने के लिए फिर उनकी ज़रूरत है।

हम समझ सकते है कि कबीर के उपदेशों को आज फिर से उभारने की ज़रूरत हैं। समाज में समत्व की भावना लाने की ज़रूरत है। छूआ-छूत, उँच-नीच की भावना को एक शिक्षित समाज का गुण-तत्त्व नहीं माना जा सकता। इस सामाजिक बुराई को हटाने की ज़रूरत है। धार्मिक बुराई, यथा तीर्थ-स्थान, कुर्बानी, श्राद्ध, मूर्तिपूजा, मुस्लिम धर्म में कुर्बानी, हलाल, सुन्नत इत्यादि को वे गलत

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| | Impact Factor: 4.933| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 9, Issue 5, September 2022 ||

मानते थे। यदि वास्तव में साम्यवाद लाना है तो कबीर की दृष्टि रखनी होगी। साथ ही धार्मिक तटस्थता भी रखनी होगी। कबीर की दृष्टि तो मार्क्स से भी पुरानी थी। उनकी यह समदर्शिता ही थी। इसी कारण, वे धन जोड़ने को गलत मानते थे। वे कर्मवाद के प्रबल समर्थक थे। बिना कर्म किए पाप धुलता नहीं। इस प्रकार सर्व-धर्म समभाव, विश्व में सभी के प्रति समदृष्टि, अपरिग्रह, कर्मयोग, तथा दया आदि मानवीय गुणों पर उन्होंने बल दिया। इसी कारण वे मानवतावादी कवि माने जाते है। और इन्हीं कारणों से वे सर्वाधिक प्रासंगिक है और रहेंगे।

III. परिणाम

आज जब हम चहुंओर में व्याप्त सामाजिक जड़ता और अराजकता की ओर देखते हैं तब क्रांति के विरुद्ध व्यवस्था का शंखनाद करने के लिए युगपुरुषों की आवश्यकता महसूस होती है। कबीर का कालजयी व्यक्तित्व इस समय हमारे लिए ज्योतिपुंज है। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व 1397 ई. काशी में ऑलमीड कबीर क्लासिक में पर्याप्त कलाकारी से समाज का मार्गदर्शन किया जा रहा है। वे जुलाहा कर्म को अपनाकर गृहस्थ जीवन के साथ संत बनकर 'समाज सुधार' का कार्य भी करते रहें।

लोकलाज के लिए कबीर त्यागे गए और नीमा और नीरू मुस्लिम जुलाहे द्वारा पलित टूटे हुए पुत्र थे। इंटरैक्टिव संघर्ष उपरान्त उन्होंने अपना देह त्याग मगहर में किया। जिसका वह सन्देश सनातन को नापसंद था कि यहाँ मृत्यु होने पर व्यक्ति अगले जन्म में गधा बनता है। जो लोग जीवनभर कबीर के विरोधी थे, उनकी मृत्युपरांत शव को लेकर हिंदू-मुस्लिम धर्म में उलझे रहे। कबीर की उलटबांसिया से आगे की ओर हिंदू संतों, पीरों, फकीरों, 'गुरुग्रंथसाहिब' आदि की जयंती यानी कबीर का संपूर्ण जीवन ही उनका संदेश है।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जातिवाद भारतीय समाज का सबसे बड़ा कोढ़ है। यहां समय के साथ सभी चीजें नष्ट हो जाती हैं, लेकिन 'जाति' एक ऐसी चीज शब्द है जो कभी नहीं होती। सोपान की अवस्था में स्वर्ण, अवर्ण, अस्पृश्यता, उच्च- निंदा आदि से घटिया भारतीय समाज के खिलाफ कबीर ने आवाज उठाई और मानव मुक्ति की बात कही। जन्म के आधार पर भेदभाव को वे असमान कहते हैं -
जो तू बामन बामणी जाए, आन बात तैं काहे न आया।
वे आम आदमी की आवाज थे। उन्होंने निम्नवत निजी को शब्द दिये। कबीर ने जन्म/जाति या कुलगत उच्चता के स्थान पर कर्म और विचारधारा की उच्चता को प्रतिष्ठा दी। उन्होंने एक आदर्श समाज का सपना देखा और जो वर्णभेद जैसा मानव-मानव को अलग करने वाली परंपराओं का खंडन किया। आज जब जाति का बोलबाला है, तब कबीर द्वारा जातिवाद के विरोधियों की कही गई यह पुरानी लड़ाई की याद आती है। वे डॉक्यूमेंट्री की आवाज थे और ब्लैकआउट युग के जन नेता थे।

अपवित्र लोकतान्त्रिक भारत [18,19,20]के लिए हमें आदर्श समाज के आदर्श कबीर के संदेश मिलते हैं। हिंदू समाज बहिष्कृत और मुस्लिम समाज तिरस्कृत कबीर ने ईश्वरीय एकता की बात कही। उन्होंने धर्म के नाम पर भेदभाव तथा ईश्वर के नाम पर लाडाई का सोख्ता खंडन किया। कबीर के राम निर्गुण एवं निराकार ईश्वर थे। उन्होंने उसे प्रभु द्वारा बनाये गये सभी और मानव धर्म की प्रतिष्ठा की। उन्होंने आस्तिक के ईश्वर, ईश्वरीय ग्रंथ, पूजा स्थल और संतों के नाम पर विभेद को दोषी ठहराया और धार्मिक समन्वय के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। मुस्लिम खुदा कहते हैं। तू उसकी खातिर न कर तब काबा काशी हो जाएगा और राम रहीम हो जाएगा।' यही कारण है कि जब कबीर की मृत्यु हुई तब उनके शव पर दावा किया गया कि प्रत्येक धर्मानुयायी ने मगहर में उनके स्मारकीय धार्मिक सहयोग की मिसाल कायम की है।

कबीर अपने समय के क्रांतिकारी प्रवक्ता थे। उन्होंने आदम्बरों, कुरीतियों, जड़ता, मूढ़ता एवं अंधविश्वासों का तर्कपूर्ण खंडन किया। कबीर का अपने युग के प्रति यथार्थ बोध इतना था कि उन्होंने एक परंपरा, रूढ़, कुरीती और पाखंड को वास्तविकता के शिखर पर छोड़ दिया था। अबुलफजल ने आइने अकबरी में लिखा है कि ''कबीर ने समाज के सादे-गले रीति-रिवाजों को स्वीकार किया।'' कबीर ने समाज सुधार के लिए कोड कोडे के रूप में तो अनासक्त और हंसी-ठिठौली द्वारा भी जनमानस में सुधार के प्रति सोच विकसित की।'' उन्होंने क्रिटिकल की आलोचना की। कबीर अराजकता, सामंतवाद और उद्घाटित-खंड के दौर में क्रांतिकारी स्वप्नकार हैं। वे प्रकृति से संत थे, लेकिन प्रकृति से उपदेशक थे। उन्होंने अंधविश्वासों का उपहास कर ठीक सहानुभूति पर चोट पहुंचाई। उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, अवतारवाद एवं कर्मकांडों का विरोध किया तथा ईश्वर एवं व्यक्ति के बीच किसी भी मध्यस्थ को उचित ठहराया। उन्होंने हर रूफ को खारिज कर दिया जो मानव-मानव में भेद कराती थी। आज के दौर में जब भौतिक शास्त्र के निर्माता, लूट-खसौट, उत्पादखोरी जैसे अपराध जगत को झकझोर रहे हैं तब कबीर के ये विचार अति-अपमानित हैं-

सांई इतनी कृपा, जामे कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं, साधु ना भूखा जाए।।
अर्थात संग्रह कबीरवाद के बजाय अपरिग्रह को महत्वपूर्ण बताते हैं। रामानंद के शिष्य कबीर ने धार्मिक आदाबों के खिलाफ आवाज उठाई और कहा कि -

कांकर पत्थर जोरी के मस्जिद लाई बनाय।
ता ऊपर मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।
कबीर की उलटबांसिया पग-पग पर मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाया जाता है, वे हर उस व्यवस्था का विरोध करते हैं जो मानव को अवनति की जंजीरों में जकड़ती है और उसे रसातल में ले जाती है।

कबीर ने मानवता की प्रतिष्ठा स्थापित की। उन्होंने धैर्य, सहनशीलता, कर्मयोग, गुरु का सम्मान, प्रेम, मानवीयता, आत्मा की पवित्रता, दीन-दुखियों की सेवा, आचरण के पालन को मानवीय कर्तव्य माना। कबीर ने 'माली सींचे सौ घड़ा' के माध्यम से धैर्य के साथ कर्म को महत्व दिया। उन्होंने 'भृगु मारी प्लास्टर' द्वारा क्षमा के महत्व और 'माटी कहे कुम्हार से' द्वारा सहनशीलता का पाठ पढ़ा। कबीर सात्विक अर्थों में कर्मयोगी थे। उन्होंने समाज को चेतावनी दी कि निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसका हाय से सब कुछ नष्ट हो जाएगा -
निर्बल को मत सताओ नहीं तो उसकी हाय से सब कुछ नष्ट हो जाएगा।
मुई काल की श्वास सौं लोह भस्म हो जाय। ।।
उन्होंने न बनाकर समाज के बीच में नौकर-चाकरी के रूप में कर्मयोगी बनकर समाज को शिक्षित किया। उन्होंने जुलाहा कर्म को अपनाकर सभी के लिए आदर्श रखा कि कोई भी व्यवसाय नहीं है अर्थात कर्म की महानता के वे साक्षात् प्रतीक थे। उन्होंने जीवन में कथनी और करनी की भलाई को महत्वपूर्ण माना। वे दुःखी मानव की पीड़ा को स्वयं भोग रहे थे - मोटर साइकिल
देखने वाला कबीरा रोए।
दुई पाटन के बीच में साबुत बचा न कोए। ।।
कबीर अनपढ थे, लेकिन वे रूढ़िवादिता के फ़कीर नहीं थे। वे यथार्थ जीवन के विद्वान थे। वे कहते हैं -
मसिकागद छूयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ।
चारिउ जुगन महात्म कबीर, मुखहि जनाई बात।।
उन्होंने शिक्षा प्रणाली को पोथियों से बाहरी यादगार प्रेम और यथार्थ पर आधारित किया -
पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
महिमा आखर प्रेम का, पढ़ें सौ पंडित होय। ।।
उन्होंने स्वावलम्बन की शिक्षा दी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्की कबीरबुद्धि को सच्ची शिक्षा मानते थे। उनके यथार्थवाद पर हज़ारी प्रसाद डियाल हैं, "कबीर ने कविता के लिए कविता नहीं लिखी, वह आप हो गए।" कबीर ने जनभाषा में जनता को सिखाया। उनकी साधुकड़ी भाषा एक ओर मातृभाषा में विद्यार्थियों को शिक्षित करने की प्रेरणा देती है, वहीं दूसरी ओर दूसरी भाषायी पाण्डित्य, परायी भाषा में अपने लोगों से बात करना और भाषा के नाम पर विवाद पैदा करना आदि प्रवृत्तियाँ पर प्रश्नचिह्न लगाती है।
आज 21वीं सदी के विश्व में भारत जहां अपनी पहचान स्थापित करना चाहता है, वहां की स्थानीय समस्याएं, जातीयवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, संप्रदायवाद के दौर में एक 'समग्र भारतीय व्यक्तित्व' के रूप में कबीर हमारे व्योम में जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं।

IV. निष्कर्ष

डॉ. हज़ारी प्रसाद गायक ने कबीर के लिए लिखा है, "वे मुसलमान नहीं थे। हिन्दू भी हिन्दू नहीं थे। वैष्णव वैष्णव भी वे वैष्णव नहीं थे। योगी भी योगी नहीं थे। वे भगवान श्रीकृष्णावतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। 'नरसिंघ की भाँति वे असंभव समझी जाने वाली थीं, जहां एक ओर ज्ञान निकलता है और दूसरी ओर भक्ति मार्ग होता है।' ' अकबर के दरबारी नीकी ने उनके बारे में कहा, "ऐसे रहो अच्छे और बुरे लोगों के साथ, !
ठीक है , कि जब मृत्यु हुई, मुस्लिम शव को पाक पानी से नहलाये और हिंदू अग्नि संस्कार करें।" समाज के अनुयायी बने हैं -
हम घर जारा अपना, मुराद हाथ के लिए।
अब घर जलौ तास का, जो चलै हमारे साथी।।
भारतीय परंपरा में वे आज जुझारू प्रेरणा के प्रतीक हैं एवं मानवता और भारतीयता के शिष्य हैं।[20]

संदर्भ

1. एल लैपटॉप, आदर्श मोबाइल एप्लिकेशन (13 जुलाई 2021)। "एमस्टर्डम, नॉर्थ हॉलैंड, नीदरलैंड के लिए पूर्णिमा दिवस" । द्रिकपंचांग। 13 जुलाई 2021 को लिया गया।
2. ^ [ए बी सी] माचवे, इब्राहिम (1968)। कबीर . नई: दिल्ली साहित्य अकादमी। प्र. 14-15.
3. ^ की, एफ.ई. (1931) और उनके मसाले: कबीर भारत का धार्मिक जीवन । संस्था: एसोसिएशन प्रेस। प्र. 164-165.
4. ^ [ए बी सी] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के संपादक (2021)। "कबीर" । एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका। 3 फरवरी 2021 को लिया गया ।
5. ↑ [ए बी सी डी] टिंकर 1990 , पृ. 75-77 .
6. ↑ [ए बी सी] मैकग्रेगर 1984 , पृ. 47.

7. ^ हेस, लिंडा (1 अगस्त 2015)। गाने की बॉडीज़ । ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी. "भारत और पाकिस्तान में मुस्लिम गायक अभी भी कबीर के पद सूफी संगीत शैली में गाते हैं," पृष्ठ 8। आईएसबीएन 978-0-19-937416-8.
8. ^ हेंडरसन गार्सिया 2002 , पृ. 70-71.
9. ↑ [ए बी सी] हेस और सिंह 2002 , पृ. 4.
10. ^ लोरेंजेन 1987 , पीपी 281-302।
11. ^ लोरेंजेन 1991 , पीपीपी। 12-18.
12. ↑ दास 1991 , पृ. 14.
13. ↑ हेस और सिंह 2002 ।
14. ↑ दास 1991 , पृ. 5.
15. ↑ लोरेंजेन, डेविड एन. (2006)। हिंदू धर्म का आविष्कार कैसे हुआ?: इतिहास में धर्म पर निबंध । नई: दिल्ली योदा प्रेस। आईएसबीएन 8190227262.
16. ↑ दास 1991 , पृ. 106.
17. ↑ लोरेंजेन 1991 , पृ. 7.
18. ↑ पैज़ेन 2010 , पृ. 77.
19. ^ मैकग्रेगर 1984 , पृ. 43-44.
20. ↑ रिज़वी (1983) , पृष्ठ 412, "दबिस्तान-ए-साहिब के लेखक कबीर ने वैष्णव वैरागियों (भिक्षुओं) की किंवदंतियों की पृष्ठभूमि में रखा, जहां उनकी पहचान थी, लेकिन उनके समकालीन, शेख अब्दुर्रहमान चिश्ती ने अपने मिरातुल-असार में कबीर के बारे में बैरागी और मुवहिद दोनों संप्रदायों को बताया "फ़ॉज़ और उन्हें फिरदौसिया सूफ़ी भी बनाया गया।"